प्रश्न–बारहवीं शताब्दी में राजपूत राज्यों के पतन के कारणों की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिए।

उत्तर—भारत की ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति इतनी डाँवाडोल थी कि कोई भी विदेशी आक्रान्ता सरलता से उस पर अपना अधिकार जमा सकता था।

तात्कालिक परिस्थितियाँ

हर्ष की मृत्यु के बाद और भारत पर मुस्लिम आक्रमण से पूर्व ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में भारत में कोई शक्तिशाली केन्द्रीय राज्य नहीं था। सम्पूर्ण देश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था जिनमें एकता का नितान्त अभाव था और जो सदैव परस्पर ईर्ष्या और द्वेष के कारण संघर्षरत थे। इसलिए ये कभी भी एक होकर विदेशी आक्रान्ता का सामना नहीं कर सके। सम्पूर्ण देश में ऐसा एक भी राज्य अथवा राजा दृष्टिगोचर नहीं होता था जिसके नेतृत्व में सभी हिन्दू एक होकर अपनी स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाये रख सकते। उत्तरी भारत में अनेक राजपूत राजाओं का शासन था। दक्षिण भारत भी कई छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था जिसके कारण केन्द्रीय सत्ता कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती थी। उत्तर भारत में उस समय निम्नलिखित प्रमुख राजपूत राजाओं का शासन था—

(i) दिल्ली में तोमर वंश का शासन था (ii) अजमेर पर चौहान राजाओं का शासन था (iii) कन्नौज पर राठौर राज्य करते थे (iv) बुन्देलखंड चंदेलों के अधिकार में था (v) बिहार और बंगाल पर पाल व सेन शासन करते थे (vi) मालवा परमारों के अधीन था (vii) गुजरात पर चालुक्यों का आधिपत्य था। मेवाड़ में सिसोदिया वंश के राजपूतों का शासन था।

अतः तत्कालीन भारत की इस राजनीतिक दुर्बलता का लाभ उठाते हुए विदेशी आक्रान्ता ने सर्वप्रथम 1175 ई० में मुहम्मद गोरी ने मुल्तान के शिया शासक पर आक्रमण किया तथा 1176 में करमाथियन शासक को हराकर मुल्तान पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इसके पश्चात् अपर सिन्ध में स्थित उच्छ पर आक्रमण किया और वहाँ के राजा की पत्नी को अपनी ओर मिलाकर धोखे से उच्छ पर अधिकार कर लिया और बाद में रानी को दिये गये वचन का भी उसने पालन नहीं किया। अपर सिन्ध की विजय के पश्चात् उसने लोअर सिन्धु के सुम्रा वंश के शासक को भी अधीनता स्वीकार करने के

Scanned with CamScanner

लिए बाध्य किया। 1178 ई० में गुजरात के राजा भीमदेव से उसे पराजय का मुँह देखना पड़ा। इस पराजय से भयभीत होकर गोरी ने 20 वर्ष तक पुनः गुजरात पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया।

गजनवी वंश के दुर्बल शासन से पेशावर छीनते हुए 1181 में लाहौर पहुँचा और 1186 में अधिकार जमा लिया। 1190-91 ई० में भटिण्डा और सरहिन्द के दुर्गों पर मुहम्मद गोरी का आधिपत्य स्थापित हो गया। 1191 ई० के तराइन युद्ध में पछाड़े जाने के बाद गोरी ने 1192 में तैयारी करके तराइन का दूसरा युद्ध जीता।

अपने स्वामी भक्त सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक को भारतीय विजित प्रदेशों का शासन भार सौंप कर मुहम्मद गजनी चला गया। कुतुबुद्दीन ने मेरठ, कोल और दिल्ली को विजय कर 1193 ई० में दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया। एक वर्ष बाद उसने कन्नौज पर भी चढ़ाई कर दी। जयचन्द बड़ी वीरता के साथ लड़ा किन्तु असफल रहा और पकड़ कर मार डाला गया।

इस प्रकार कन्नौज में भी मुस्लिम आधिपत्य स्थापित हो गया। वह अपनी सफलताओं से गर्वित होकर बनारस की ओर गया तथा बनारस के सुप्रसिद्ध मन्दिरों को तोड़-फोड़कर उनकी अतुल सम्पत्ति लूटी और मंदिरों के स्थान पर मस्जिदें बनवाई। इसके उपरान्त वह फिर गजनी वापस चला गया।

मुहम्मद बिन खिलजी ने बिहार को सरलता से ही अपने अधिकार में ले लिया। 1197 ई० में 200 घुड़सवारों को लेकर राजधानी पर आक्रमण कर दिया तथा अनेक बौद्ध भिक्षुकों को तलवार के घाट उतार दिया तथा अपना अधिकार जमा लिया। इस विजय में उसे अतुल धन सम्पत्ति प्राप्त हुई।

बंगाल विजय—बिहार की विजय के दो वर्ष बाद बंगाल को जीता गया। फरगना निवासी शमसुद्दीन नामक सैनिक से, जो मुहम्मद बिन बख्तियार की सेना में था, बंगाल के आक्रमण के सम्बन्ध में वर्णन सुनकर, उसी के आधार पर मिनहाज-उस-सिराज ने लिखा है कि—"मुहम्मद बिन बख्तियार ने एक सेना तैयार कराई तथा बंगाल से प्रस्थान किया और अप्रत्याशित रूप से नदिया नामक नगर के सम्मुख इस ढंग से आ धमका कि उसके पार्श्व में 18 से अधिक घुड़सवार न चल सके और शेष सैनिक उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। नगर में प्रवेश द्वार पर पहुँचने पर मुहम्मद-ए-बिन बख्तियार ने किसी से कुछ छेड़छाड़ न की और इतनी दृढ़ता एवं शांतिपूर्वक आगे बढ़ा कि लोगों ने शायद यह अनुमान लगाया कि यह कोई व्यापारियों का दल है तथा घोड़े को बेचने आया है और तब तक उन्हें यह कल्पना भी नहीं हुई कि यह मुहम्मद-ए-बख्तियार है, जब तक कि उसने राय लखमनिया के द्वार पर पहुँचकर तलवार खींच कर काफिरों का वध करना प्रारम्भ न कर दिया।"

कालिंजर की विजय—1202 ई० में कुतबुद्दीन ने बुन्देलखण्ड के शासक परमाल पर आक्रमण किया। दिल्ली तथा कन्नौज जैसे शक्तिशाली साम्राज्यों के विजेता के सम्मुख परमाल भला कैसे टिक सकता था। परमाल हार गया तथा कालिंजर के दुर्ग पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। परमाल के वीरामात्य अजयदेव ने आक्रमणकारियों से बड़ी दृढ़ता के साथ टक्कर ली किन्तु असफल रहा। मंदिरों को तोड़ा गया तथा "पचास हजार मनुष्यों के गले में दासता का फंदा डाला गया और हिन्दुओं के शवों से भूमि पट गई।"

इसके पश्चात् ऐबक ने महोवा की ओर प्रस्थान किया और उस पर अधिकार करने में कोई विशेष कठिनाई का सामना न करना पड़ा। तदुपरांत काल्पी, बदाऊँ आदि के दुर्गों पर अधिकार किया गया और इस प्रकार कुतुबुद्दीन ने उत्तरी भारत के सभी प्रमुख

Scanned with CamScanner

स्थानों पर गजनी का प्रभुत्व स्थापित करके अपनी स्थायिभक्ति का परिचय दिया।

यह सुन कर बड़ा ही आश्चर्य होता है कि उस काल में जबकि सम्पूर्ण भारत हिन्दू राजाओं द्वारा शासित था कुछ ही विदेशी आक्रान्ताओं ने 25 वर्ष के अल्प समय में समस्त उत्तरी भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

राजपूतों के पराजय का कारण

1. सामन्त प्रथा—राजपूत शक्ति की निर्बलता का कारण सामन्त प्रथा थी। इस प्रथा के अनुसार राजा प्रमुख था और सम्पूर्ण राज्य छोटे-छोटे शासकों में विभाजित था जो शासन करते तथा युद्ध के समय राजा की धन जन से सहायता करते थे। ऐसा शासन अधिक स्थायी नहीं हो सकता।

2. राष्ट्रीयता का अभाव—भारतीय जनता में राष्ट्रीयता का अभाव था। उनका सामाजिक संगठन बड़ा ही निन्दनीय था। समाज अलग-अलग विभिन्न वर्गों में बँटा था। प्रत्येक वर्ण का कार्य जन्म से ही निश्चित था। राजपूतों पर ही देश की रक्षा का भार था। अकेले राजपूतों ने ही आक्रमणकारियों का सामना किया। साधारण जनता इस ओर से एकदम उदासीन रही। किसी समय भी भारतीयों ने मिलकर विदेशियों का सामना न किया।

3. हिन्दू सैनिक प्रथा प्राचीन शास्त्रों पर आधारित—राजपूत लड़कर मरना जानते थे किन्तु एक सूत्र में बँध कर नहीं लड़ सकते थे। हिन्दू सैनिक-प्रथा प्राचीन शास्त्रों पर आश्रित थी। राजपूतों ने परिवर्तित युग के अनुसार युद्ध विज्ञान की उन्नति की ओर कोई ध्यान न दिया। पाश्चात्य देशों में नवीन खोजें युद्ध विज्ञान में की जा चुकी थीं जबकि भारतीय राजपूत अपनी प्राचीन परिपाटी को ही अपनाये रहे जो एक भारतीय राजा की दूसरे भारतीय राजा से युद्ध करने में सहायता कर सकती थी किन्तु एक सुसंगठित आक्रमणकारी के सम्मुख जो शस्त्रों की परवाह नहीं करते थे, भारतीय युद्ध प्रणाली असफल सिद्ध हो जाती थी।

4. नेतृत्व की एकता का अभाव—मुस्लिम सेना एक ही नेता के नेतृत्व में युद्ध करती थी किन्तु राजपूत अनेक राजाओं के नेतृत्व में लड़ते थे। इस प्रकार राजपूतों की सेना में नेतृत्व की एकता का अभाव रहता था। वह एक दूसरे के नेतृत्व में रह कर युद्ध करने में अपनी मान हानि समझते थे। इसके अतिरिक्त मुसलमानों में बड़ा धार्मिक जोश था।

5. विशेष लक्ष्य की भूमिका—डॉ० ईश्वरी प्रसाद का कथन है कि मुसलमान एक निश्चित लक्ष्य के लिए लड़े जबकि हिन्दुओं में जातिहित को छोड़कर कोई विशेष लक्ष्य सामने नहीं था। वह शक्ति और स्फूर्ति, जो एक निश्चित लक्ष्य लेकर उत्पन्न होती है, हिन्दुओं में नहीं थी और इसी कारण उनमें मुसलमानों के समान आत्म-बलिदान एवं साहस का अभाव दिखाई पड़ता था।

6. शत्रु की शक्ति के ज्ञान का अभाव—मुसलमान आक्रमणकारी शत्रु की शक्ति का पूरा भेद पा लेते थे और उसकी दुर्बलताओं से अधिक से अधिक लाभ उठाने का प्रयत्न करते थे। राजपूतों ने शत्रु की सैनिक दुर्बलताओं का कभी पता लगाने का प्रयत्न नहीं किया। तुर्कों का यह नियम था कि युद्ध के पूर्व वह युद्ध स्थल की पड़ताल अवश्य करते तथा उसकी भौगोलिक स्थिति का ध्यान रखते थे। भारतीय शासक सदैव सेना को दक्षिण बाम तथा मध्य पार्श्वों में बाँट करके शत्रु पर सामने से धावा करते थे।

(7) कूटनीति का अभाव—ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं कि तुर्क लोग तालाबों और नदियों का जल दूषित कर देते थे जिससे भारतीय सैनिकों को जल न प्राप्त हो

Scanned with CamScanner

सके। शत्रु की रसद के मार्गों को काट कर उन प्रदेशों को उजाड़ करके तहस-नहस कर देते थे, जिनसे रसद प्राप्त न होती थी किन्तु किसी भारतीयों ने ऐसी राजनीति को न अपनाया। भारतीयों में कूट नीति का अभाव था। वह निःशस्त्र तथा पराजित शत्रु पर कभी हाथ न उठाते थे।

(8) रण-कुशलता की कमी—महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी दोनों ने सहसा आक्रमण की नीति को अपनाया, जिससे भारतीयों का उत्साह और भी भंग हो गया और उनका मनोबल जाता रहा। वे बिजली की भांति हमारे सैनिकों पर टूट पड़ते थे। उन्होंने तलवार तथा अग्नि द्वारा देश को उजाड़ कर दिया। इस नीति का अनेक बार प्रयोग किया गया कि हमारी जनता इतनी भयभीत तथा आतंकित हो गई कि तुर्की सैनिकों को वह अजेय समझने लगी। इस प्रकार सैनिक दृष्टिकोण से उस समय के भारतीयों का मनोबल समाप्त हो गया और वे समझने लगे कि तुर्कों से टक्कर लेना व्यर्थ है। ऐसी लड़ाई में जिसमें बाणों का अधिक प्रयोग होता था हाथियों से राजपूतों को जितने लाभ की आशा थी उससे कहीं अधिक हानि उठानी पड़ती थी। वे घबरा कर युद्ध से भाग खड़े होते थे जिससे सेना में भगदड़ मच जाती थी। राजपूतों का मुख्य हथियार तलवार थी जिससे मुठभेड़ तथा घमासान युद्ध के समय अधिक सफलता प्राप्त की जा सकती किन्तु तुर्क लोग यह बात भली प्रकार समझते थे। अतएव वे दूर से बाणों से युद्ध किया करते थे। हमारे मन्द गति वाले टट्टुओं तथा हाथियों की अपेक्षा तुर्कों की शीघ्र गति वाली अश्वारोही सेना कहीं अधिक सफल रहती थी।

निष्कर्ष (Conclusion)—इस प्रकार हम देखते हैं कि राजपूतों में सरदार, प्रथा, राज्यों में पारस्परिक कलह, भारतीयों में राष्ट्रीय भावना का अभाव, राजपूतों में नवीन शैली की युद्ध कला का न्यून ज्ञान, स्थायी सेना का अभाव तथा भारतीय जाति-प्रथा आदि बातें ऐसी थीं जिनके कारण भारतीय विदेशियों से सैनिक योग्यता में न्यून सिद्ध हुए, जिसके फलस्वरूप राजपूतों को पराजय सहन करनी पड़ी और मुसलमानों ने प्रत्येक स्थान पर सफलता प्राप्त की।

मूल्यांकन (Evaluation)—हिन्दुओं में सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टि से यह भी एक दोष था कि केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय ही राजकाज में लगे हुए थे क्योंकि उन्हीं को इस प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। तुर्कों तथा राजपूतों के गृह युद्धों में बड़ा अन्तर रहता था। तुर्क तो सिंहासन छीनने के लिए गृह युद्ध करते थे किन्तु राजपूत अपनी शक्ति आजमाने के लिए ही गृह युद्ध करते थे वे सामन्तशाही पद्धति को जन्म देने के लिए युद्ध करते थे जिसके परिणामस्वरूप उनकी शक्ति क्षीण होती गई। राजपूतों ने कभी सीमा रक्षा के लिए भी कोई क्रियात्मक पग नहीं उठाये। उन्होंने कभी वैदेशिक विभाग का भी संगठन नहीं किया। राजपूतों में उत्तराधिकार की प्रथा दूषित थी क्योंकि राजा का ही योग्य अथवा अयोग्य पुत्र ही गद्दी का अधिकारी हो सकता था जबकि तुर्कों में योग्यतम व्यक्ति ही गद्दी का अधिकारी होता था।

Scanned with CamScanner